आत्म-विलोपी

आबाजी

• दत्तोपंत ठेंगडी •

ॐ

आत्म-विलोपी आबाजी

(दि.६ दिसम्बर १९९५ को रेशिमबाग स्थित डॉ.हेडगेवार सभा-भवन में नागपुर महानगर संघशाखा की ओर से आयोजित स्व.डॉ.आबाजी थत्ते के प्रति श्रद्धांजली समर्पण कार्यक्रम में माननीय श्री दत्तोपंत ठेंगडी का भाषण)

संयोग की बात है कि आज यह शोकसभा ६ दिसम्बर को हो रही है। इसके कारण सभा के प्रारंभ में, मैं चारों दिशाओं को चार कारणों से प्रणाम करता हूं। दक्षिण दिशा को प्रणाम करता हूं, क्योंकि थत्ते परिवार की इष्ट देवता दक्षिण दिशा में गाणगापुर में है। आज दत्त-जयंति का अवसर है, यह भी संयोग की बात है, इसलिये में दक्षिण दिशा को प्रणाम करता हूं। पूर्व दिशा को इसलिये प्रणाम करता हूं क्योंकि आज ही ६ दिसम्बर का वह क्रांतिकारी दिवस है, जिस दिन अयोध्या में नयी क्रांति का शुभारंभ हुआ और जिसका क्रांतिकारी स्वरूप आज भी कायम है। मैं पश्चिम दिशा को प्रणाम करता हूं क्योंकि पश्चिम दिशा जिनकी जन्मभूमि और प्रारंभिक काल में कर्मभूमि रही, ऐसे उस महापुरुष डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर का आज (६ दिसंबर) महानिर्वाण दिवस भी है। मैं उत्तर दिशा को इसलिए प्रणाम करता हूं, क्योंकि इसी दिन रात के समय टी.व्ही.और रेडिओ से भाषण करते हुए देश के शासनप्रमुख ने ऐसी गैर-जिम्मेदारी और मूर्खता की बातें कही थी कि जिसके कारण अपमानित और लज्जित होकर जो हिन्दुत्व के विषय में

नरम थे, वे भी गरम हो गये - एक तरह से प्रेरणा और प्रोत्साहन ही उस भाषण से सबको मिली, इसलिये मैं उत्तर दिशा को भी प्रणाम करता हूं। यह दिन इस तरह से ऐतिहासिक महत्व का है।

कुछ बोलने से पूर्व स्वाभाविक रूप से मैं एक बात का उल्लेख करना चाहूंगा! डॉ.आबाजी थत्ते के निधन से शोक तो हम सभी को हुआ है - देशभर में संघ के लोगों को और बाहर के भी लोगों को शोक हुआ है। किन्तु तीन व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके शोक का वर्णन शब्दों में करना संभव नहीं है, जो अति शोक-विव्हल होकर मन ही मन कह रहे हैं - मराठी में वाक्य है- "त्वा माझे श्राद्ध करावे, मज तुझेच करणे आले"- अर्थात, तुम्हें हमारा श्राद्ध करना चाहिये था, लेकिन हमारे ऊपर तुम्हारा श्राद्ध करने की बारी आयी! ऐसा जो मन ही मन शोक -विव्हल होकर कह रहे हैं, ऐसे तीन व्यक्ति हैं - प.पू. बालासाहब देवरस, श्रीमती सिन्धुताई फाटक (आबाजी की बड़ी बहन) और श्रीमती वहिनी थत्ते (आबाजी की भाभी), जो इस समय मुंबई में हैं और जिन्होंने पुत्रवत आबाजी का पालन पोषण किया! इन तीन व्यक्तियों की मनस्थिति का वर्णन करना असंभव है।

अभूतपूर्व आत्मसंयम

मुझे आदेश हुआ है कि आज के प्रसंग पर मैं कुछ बोलूं। किन्तु आप कल्पना कर सकते हैं कि एक मनुष्य के नाते मेरे भी मन में, हृदय में यह घाव इतना ताजा है कि इस विकल मनस्थिति में भाषण करना, किसी के लिये भी संभव नहीं होता, सो मेरी भी वही स्थिति है! हा, कुछ काल बीतने के बाद, जैसा कि कहा जाता है Time is cure - मुझसे आबाजी के बारे में कुछ बोलने का अवसर मिलता तो मैं ठीक ढंग से बोल सकता था। आज घाव ताजा होने के कारण मनस्थिति ठीक नहीं है। आबाजी के बारे में बोलना वैसे भी कठिन है। इसका एक कारण तो यह है कि कुछ वर्षों पूर्व जब आबाजी की षष्ठ्यब्दि पूर्ति हुई थी तब मुंबई के एक सभाभवन में उस

निमित्त एक समारोह हुआ था। उसी समय मुंबई के मराठी साप्ताहिक 'विवेक' ने एक विशेष-सामग्री सहित अंक प्रकाशित किया था। आबाजी के सम्बन्ध में प्रकाशित लेख में उनके एक महत्वपूर्ण गुण का विशेष उल्लेख करते हुए कहा गया था कि आबाजी की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि वे 'आत्मसंयमी' थे और इसका वर्णन करते हुए लेख में कहा गया कि इतने वर्षों तक वे सरसंघचालकजी के साथ, उनकी छाया के समान हमेशा रहे। आप जानते ही हैं कि सरसंघचालक संघ का केन्द्र होता है - संघ जो प्रबल हिन्दू संघटन है, उसका केन्द्र यानि संघ का केन्द्र यानि सरसंघचालक - उसकी छाया के समान, सहचर होकर हमेशा रहे। उन्होंने कितनी ही महत्वपूर्ण घटनाएं देखी होंगी-प्रसंग देखे होंगे -सरसंघचालकजी के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ संभाषण सुने होंगे -किंतु यह सारा होते हुए भी - कभी भी एक शब्द भी उनके मुंह से नहीं निकला ! यह महान आत्म संयम है! क्योंकि, व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि कोई महत्वपूर्ण बात यदि मालुम हुई तो उसे कहीं न कहीं प्रगट करना और अपनी महत्ता या विशेषता दर्शाने के लर्ज में, अपने किसी मित्र के सामने वह मानों कोई रहस्योद्घाटन कर रहा हो, इस लहजे में बताना कि देखो, मैं तुम्हे ही सिर्फ यह बता रहा हूं, किसी से कहना नहीं। और आप जानते हैं कि किसी भी बात को जग-जाहिर करने का यह बड़ा आसान तरीका होता है - किसी को नहीं बताने की शर्त पर 'गुप्त' बात मित्र के पास जाहिर कर दीजिये फिर देखिये कैसे आसानी से सारे विश्व को उस बात का पता चल जाता है! किंतु आबाजी के मुंह से कभी एक शब्द भी नहीं निकला-यह आत्मसंयम सचमुच अभूतपूर्व

सरसंघचालक की छाया

पूजनीय श्री गुरूजी की मृत्यु के एक वर्ष बाद प्रवास मे, एक प्रचारक ने उनसे कहा कि गुरुजी के बारे में अनेक लोगों ने लेख लिखे हैं, आपने कुछ

नहीं लिखा, कुछ बोला नहीं, भाषण भी नहीं दिया, आखिर क्या बात है ? आप तो गुरुजी की सविस्तार जीवनी ही लिख सकते थे। यह बात सही भी है कि उनके अंदर लिखने की कोई क्षमता नहीं थी, ऐसी कोई बात नहीं। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने पूजनीय श्री गुरुजी के साथ सहवास के अपने कुछ अनुभव लिखना प्रारंभ भी किया था: कुछ स्थानों पर लोगों के अति आग्रह के कारण इस विषय में उन्होंने भाषण भी दिये ! यह बात अलग है, किन्तु इस विषय में कुछ बोलने या लिखने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। इसीलिये उस प्रचारक को उन्होंने उत्तर दिया, "गुरुजी के बारे में मैं क्या लिख सकता हूं ? आप तो जानते हैं कि 'रामायण' प्रभु रामचंद्र की जीवनी है, किन्तु वह वाल्मिकी ने लिखी, हनुमानजी ने नहीं।" सरसंघचालकजी के विषय में उनके मन में क्या भाव थे, कितनी श्रद्धा थी–यही इस उत्तर से प्रकट होता है । वास्तव में छाया के समान ही मेरा अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं–यह भावना, यह आत्मसंयम !

कभी-कभी किसी आवश्यकता के नाते जब वे गुस्सा होते तो लोगों को लगता था कि कहीं ये गुस्सेबाज तो नहीं! लेकिन ऐसा नहीं था। संतुलित मन रखते हुए भी, संघ कार्य में किसी दृश्य से उन्हें गुस्सा भी आता तो क्षणार्ध में समाप्त भी हो जाता। एक कार्यकर्ता ने मुझे बताया कि एक बार पूजनीय गुरुजी के कपड़े किसी कार्यकर्ता के यहां रह गये और पूजनीय गुरुजी को उसी शाम ट्रेन से प्रवास पर जाना था, अतः आबाजी ने सुबह ही उसके यहां संदेशा भिजवा दिया कि वह सायंकाल गुरुजी के कपड़े लेकर सीधे रेल्वे-स्टेशन पर ही पहुंचे। वह कार्यकर्ता भूल गया और कपड़े लेव स्टेशन पर नहीं पहुंचा। प्रवास में गुरुजी को कष्ट तो हुआ ही होगा। वे ता कुछ नहीं बोले, पर आबाजी ने उस कार्यकर्ता के नाम पत्र भेजा, जिससे उनका गुस्सा प्रकट होता था। पत्र में लिखा था –'तेरे हाथों यह जो भूल हुई, उस समय मुझे समर्थ रामदास स्वामी के वचन याद हो आए– "जो दुसऱ्याावरी विश्वासला त्याचा कार्यभाग बुडाला। जो स्वयेंचि कष्टत गेला तोचि धन्य

जाहला।" यह पत्र पाते ही वह कार्यकर्ता हिल उठा। उसने सोचा कि श्री गुरुजी और आबाजी जब वापस आयेंगे तब उसे डाँट-फटकार सुनने को मिलेगी। वह उन्हे स्टेशन पर लेने पहुंचा तो वह यह देखकर दंग रह गया कि डाँट-फटकार तो दूर रही आबाजी ने हंसते हुए कहा – 'अरे, तू तो आ गया ' और एकदम उसे गले लगाया। फिर उसके स्वास्थ्य की पूछताछ और हंसी-मजाक होती रही। पहले उस कार्यकर्ता से जो भूल हुई थी, उसका

ीं कोई जिक्र तक नहीं ! कहते हैं, शुभ्र-वस्त्र पर स्वच्छ पानी का दाग भी लगा हुआ दिखाई देता है, किन्तु थोड़े ही समय में वह दाग अपने आप मिट जाता है। पता भीनहीं लगता कि कोई दाग लगा था ! वैसा ही आबाजी का गुस्सा था, कार्य की आवश्यकता के नाते था और आत्मसंयम की प्रबलता के कारण क्षण-भर में वह गुस्सा समाप्त हो जाता था।

आत्मविलोपी वृत्ति

आबाजी के इस आत्मसंयम को मैं आत्म विलोप की संज्ञा देना चाहता हूं। इस आत्मविलोपी वृत्ति के कारण ही वे अपने जीवन के बारे में, अपने अनुभवों के बारे में कभी कुछ बोलते नहीं थे। जो लोग घनिष्ठ सम्पर्क में आये, ऐसे हरेक कार्यकर्ता को इसका अनुभव अवश्य हुआ होगा। आबाजी का समग्र दर्शन कोई एक व्यक्ति दे सकेगा, यह असंभव ही लगता है। अलग-अलग कालखंड में, अलग-अलग कार्यक्षेत्र में जिन लोगों का उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध आया होगा, ऐसे १०-१२-१५ व्यक्ति एकत्रित आकर

उनके बारे में जानकारी दें तो ही उनका समग्र दर्शन होगा। कोई भी एक व्यक्ति समग्र दर्शन नहीं दे सकता।

अप्पा और वहिनी थत्ते की विरासत

वैसे हम जानते हैं कि उनका बाल्यकाल संस्कार और संगोपन की दृष्टि से उनके बड़े भाई श्री अप्पा थत्ते और भाभी (वहिनी थत्ते) के अभिभावकत्व

में बीता । इन दोनों का व्यक्तित्व कैसा था, यह शब्दों में नहीं बताया जा सकता। जो उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आए, वेही बता सकते हैं। मैंने पु.ल.देशपांडे की व्यक्तिरेखा नामक मराठी पुस्तक पढी है। उसे पढकर मुझे लगा कि मेरे अन्दर भी व्यक्तिरेखा लिखने की क्षमता होती तो मैं जिन व्यक्तियों की व्यक्ति रेखा लिखना चाहता हूं, उसमें अप्पा थत्ते और वहिनी थत्ते ये दो 'कॅरेक्टर्स' आते। उनके बारे में लिखना बहुत कठिन है। अप्पा जब स्टेट बैंक में अधिकारी पद पर थे, तो सभी कर्मचारियों के प्रति उनके हृदय में अपनत्व और करूणा का स्थायी भाव रहा। नेशनल ऑर्गनाईझेशन ऑफ बैंक एम्प्लाईज (एन.ओ.बी.डब्ल्यू.) का काम शुरू होने के बाद जब मैं बैंक कर्मचारियों के निकट सम्पर्क में आया और प्रवास के दौरान कई जगह गया, तो स्टेट बैंक के कितने ही लोगों ने बताया कि "भाई, आज मैं इस पोजीशन में हूं, वह अप्पा थत्ते के कारण ही हूं।उन्होने मुझे प्रोत्साहन नहीं दिया होता, मेरा धीरज नहीं बंधाया होता, तो मैं अपने जीवन से निराश हो चुका था, मेरा रहना असंभव था, किन्तु अप्पा थत्ते ने आशा की किरण दिखाई और आज उन्ही के आशीर्वाद से मैं इस पोजीशन पर हूं।" अनेक कर्मचारियों से यही अनुभव मुझे सुनने को मिला। यह परोपकारी वृत्ति और समरसता-संयोग विशेषकर पति-पत्नी के बीच, जिसे आजकल बोलते हैं 'मेड फॉर इच अदर' ऐसा संयोग बहुत कम दिखाई देता है। परमेश्वर की कृपा से वह संयोग थत्ते दम्पत्ति में रहा। दोनों में ही परोपकारी वृत्ति उनके स्वभाव का स्थायी अंग बनकर रही। उन्होने आबाजी को पुत्रवत स्नेह दिया मातृवत् संगोपन किया।दूसरों के दुःख से दुःखी होने की प्रवृत्ति, परोपकार की प्रवृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति ये सब संस्कारों से विरासत के रूप में आबाजी को अप्पा और वहिनी से ही प्राप्त हुई। यह बहुत कम लोग जानते हैं कि आबाजी भी मूलतः आध्यात्मिक प्रवृत्ति के ही थे, किंतु यह सच है कि आबाजी स्वयं उसका प्रगटीकरण न हो, प्रदर्शन न हो, इसकी चिन्ता करते

थे। शायद इसलिये कि जैसा संत ज्ञानेश्वर ने कहा है 'अलौकिक न व्हावे लोकाप्रति' इस सूत्र को उन्होंने अपनाया था। और, तीसरी बात स्वाभाविक रूप से संघ के स्वयंसेवकों के मन में आती है कि आबाजी का संघ प्रवेश कब हुआ ?

अभी आबाजी का अंतिम दर्शन लेकर जब मैं दिल्ली गया तो वहां बापूराव लेले ने मुझे बताया कि १९३८ में पहले अप्पा थत्ते का संघ प्रवेश हुआ और १९३९ में मुंबई की शिवाजी पार्क में शाखा में आबाजी का संघ प्रवेश हुआ। अप्पा ही आबा को संघ में लाये। शिवाजी पार्क की शाखा में उस समय मा.दादासाहब आपटे, पंडित राव आपटे, भास्करराव कलंबी, श्री राम साठे और कुछ समय के लिये लालकृष्ण आडवाणी जैसे लोग उनके परिसर में रहे। इस प्रकार परोपकार, आध्यात्मिक प्रवृत्ति और संघ प्रवेश- ये तीनों ही बातें अप्पा और वहिनी के सहवास में प्राप्त संस्कारों के रूप में आबाजी ने प्राप्त की। इस दृष्टि से अप्पा और वहिनी दोनों का जो ऋण है, हम सभी पर, उस ऋण का स्मरण करना आवश्यक है।

मुंबई में संघ के स्वयंसेवकों, अधिकारियों से अनौपचारिक वार्तालापों से आबाजी के बारे में यह जानकारी भी मिली कि जब आबाजी ने मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लिया तो उस समय स्वाध्याय और संघ कार्य-इनका ठीक मेल वे बिठा सकते थे। अपने दिल-खुले स्वभाव के कारण विद्यार्थी बंधुओं में लोकप्रिय थे- अनेकों से घनिष्ट मित्रता थी। इस कारण अनेक मेडिकल छात्रों को संघ की शाखा में लाने में उन्हे सफलता मिली। अनेक छात्रों के परिवारों में उनका प्रवेश था। मेडिकल की शिक्षा पूर्ण होने और डिग्री प्राप्त करने के पश्चात उनके मन में संघ का प्रचारक बनने की इच्छा हुई। थत्ते परिवार के सभी लोगों ने उन्हे इस दिशा में प्रोत्साहित ही किया, किसी ने निरुत्साहित नहीं किया।

जब संघ प्रचारक निकले

सन ४४ का अंत और ४५ के प्रारंभ का समय था, जब आबाजी को नागपुर बुलाया गया। उस समय किस को कौनसा काम दिया जाए, प्रचारक को कहां भेजा जाए आदि सब बातों का निर्णय प.पू. बाळासाहब देवरस पूजनीय श्री गुरुजी की सलाह से किया करते थे। उन दोनों की मंत्रणा का ही परिणाम था कि आबाजी को यहां बुलाया गया लेकिन एकदम कार्य नहीं सौंपा गया। पहले तो कहा गया कि बडकस चौक में डॉ.पांडे के साथ उनके दवाखाने में रोगियों की चिकित्सा-सेवा करो। आप में से अनेकों को याद होगा कि डॉ.पांडे के दवाखाने में डॉ.थत्ते का भी साइन बोर्ड लटका रहता था। लेकिन आबाजी को नागपुर लाने का मूल उद्देश्य प.पू.श्री गुरुजी के साथ अटेन्डेंट के रूप में किसी अच्छे कार्यकर्ता की तलाश के निमित्त ही था। पूजनीय श्री गुरुजी के स्वास्थ्य का विचार करते हुए कोई डॉक्टर कार्यकर्ता का उनके साथ रहना अधिक उचित माना गया।

प्रचारक की कसौटियों पर खरे उतरे

यहां एक बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि संघ के प्रारंभिक काल से ही किसी कार्यकर्ता को प्रचारक के नाते नियुक्त करने के सम्बन्ध में पूजनीय बाळासाहब की विचार पध्दति यह रही है कि उसे फील्ड वर्क के साथ साथ संघ शाखा से निगडित कई तरह के काम, जिनमें एक काम सरसंघचालकजी के साथ रहना भी था, करने की दृष्टि से उसकी तैयारी कितनी है और इस दृष्टि से प्रत्यक्ष संघ कार्य-नई शाखाएं खोलना, पुरानी शाखाएं ठीक तरह से चलाना आदि फील्ड-वर्क की रगड से जाना उसके लिये आवश्यक होता है। इस पूर्व तैयारी के बाद ही उस प्रचारक को आवश्यकतानुसार कोई अन्य कार्य या दायित्व सौंपा जाता है। अतः आबाजी को इस पूर्व तैयारी 'अप्रेन्टिसशिप' के लिये बंगाल भेजा गया। बंगाल में संघ का प्रारंभिक कार्य पू.गुरुजी और पू.बाळासाहब देवरस ने किया था। जब

भी कोई नया प्रचारक किसी भी प्रांत में कार्य करने हेतु आता है तो उसे कुछ कसौटियों से गुजरना पडता है। पहली बात तो यह कि जिस प्रांत में वह नया प्रचारक जाता है, उस प्रांत के प्रांत-प्रचारक का मूल्यांकन उस नये प्रचारक के बारे में क्या होता है? दूसरी बात यह कि वहां जो पहले से काम करने वाले पुराने प्रचारक होते हैं, उनमें इस नये प्रचारक के प्रति अपनत्व, स्वीकृति, मान्यता की भावना कब और कैसी निर्माण होती है? तीसरी कसौटी वह होती है कि जिस क्षेत्र में यह नया प्रचारक गया है, वह अगर बिलकुल नया क्षेत्र हो, जहां संघ कार्य का प्रारंभ ही करना है तो बात अलग है, किन्तु अगर वहां कार्य आरंभ हो चुका है तो फिर यह नया प्रचारक वहां के कार्यकर्ताओं को कहां तक और कितना आत्मसात कर पाता है? उसी प्रकार वहां के कार्यकर्त्ता भी इस नये प्रचारक के साथ आत्मसात होने के लिये कहां तक तैयार है? यही तीन प्रमुख कसौटियां हैं, जिनमें से नये प्रचारक को जाना होता है। आबाजी थत्ते को संघ का पुराना क्षेत्र ही मिला था, जहां उनके पूर्व कई पुराने प्रचारक काम कर चुके थे। किन्तु आबाजी के बारे में यह आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि उक्त तीनो कसौटियों को सफलता से पार करने में कोई देर नहीं लगी - उन्हे मान्यता देने की, स्वीकृती देने की, और अपनाने की सारी प्रक्रियायें स्वाभाविक और सहज ढंग से हो गई। यहां तक कि प्रांत प्रचारक भी उन्हे अपने हाथ के नीचे काम करने वाला प्रचारक न मानकर अपने समकक्ष मानते और कार्य विस्तार सम्बन्धी हर योजना और कार्यक्रम के सम्बन्ध में उनसे परामर्श लेते।

'फील्ड वर्क' की रगड

उन दिनों बंगाल मे संघ का कार्य कम था किन्तु शिवपुर, बरहामपुर, नवदीप और मालदा जैसे कुछ प्रमुख केन्द्र थे, जहां संघ की अच्छी शाखाएं चल रहीं थी। आबाजी थत्ते की नियुक्ती शिवपुर में की गई। अब तक इस क्षेत्र में बाहर से ही, विशेषकर महाराष्ट्र से प्रचारक भेजे जाते रहे। किन्तु

आबाजी थत्ते का स्वभाव, गुणवत्ता और कार्यशैली का इतना अच्छा प्रभाव पडा कि शिवपुर क्षेत्र से स्थानीय प्रचारक के रूप में अनेक कार्यकर्ता निकले। व्यक्ति की परख और अपने सम्पर्क से उसे संघ कार्य में जुटाना, यह आबाजी की विशेषता रही। इस सन्दर्भ में मैं केवल एक व्यक्ति के नाम का यहां उल्लेख करना चाहूंगा। इस नाम से शायद आप भी परिचित होंगे। केशव देव चक्रवर्ती उनका नाम है। वे वहां की एक शाला में मुख्याध्यापक थे, संघ से सहानुभूमि रखते थे। आबाजी थत्ते के सम्पर्क में आकर वे संघ के कार्यकर्ता बने-जिला संघचालक बने और प्रांत संघचालक का दायित्व भी कुशलता से निभाया। संघ के प्रत्यक्ष कार्य, फील्डवर्क की जो रगड है, पूजनीय बाळासाहब की इच्छानुसार उस रगड में से जाकर आबाजी ने अपनी योग्यता प्रकट की।

सरसंघचालक के सहायक के रूप में

संघ पर लगे प्रथम प्रतिबंध के हटने पर कार्य की नयी रचना में आबाजी थत्ते के बारे में पहले जो सोचा गया था, पूजनीय सरसंघचालकजी के अटेन्डेन्ट (सहायक) के नाते उनकी नियुक्ति की गई। बहुत लोगों के ध्यान में यह बात आती नहीं, जैसा कहा भी गया है कि 'अति परिचयादवज्ञा' - अर्थात अनेक वर्षों से हम सब देखते आए हैं, इसलिये हमको पता नहीं चलता कि इस कार्य की विशेषता क्या है? सरसंघचालक को अटेन्ड करना - सरल काम है, इसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यह कार्य करने वाला व्यक्ति कौन-कौन से काम करेगा, किस तरह के काम करेगा-इन बातों का विवरण कहीं मिलता नहीं, हो सकता है पूजनीय बाळासाहब ने उनके साथ बातचीत करते हुए समय समय पर उन्हे कुछ संकेत दिये हों किन्तु उनके कार्य का पूर्ण विवरण संघ के संविधान में भी नहीं है, क्योंकि यह कोई संविधान प्रदत्त पद भी नहीं है। अतः जो संकेत ऊपर से आये होंगे, उनका पालन करते हुए, आबाजी की विशेषता यह रही

कि उन्होने अपने लिये परिस्थिति को देखते हुए, आवश्यकतानुसार अपने लिये काम खोजे और उन पर अमल किया। स्वयं प्रेरणा से, खुद पहल करते हुए, अपने विचार और कार्य के लिये पोषक काम खोजते हुए उस दिशा में अपना प्रवास प्रारंभ किया, जिस दिशा में, जिस रास्ते पर कोई चला नहीं।

सम्पर्क केन्द्र

नागपुर में, संघ कार्यालय में वास्तव्य के दौरान बाहर से आने वाले प्रचारकों-कार्यकर्ताओं और कार्यालय में रहने वाले सभी लोगो के साथ सम्पर्क रखकर, उनकी चिंता करना, उनकी खुशहाली का विचार करना, यह भी एक काम उन्होंने स्वयं अपने जिम्मे ले रखा था। उन दिनों व्यवस्था प्रमुख पांडुरंग पंत क्षीरसागर, मान.कृष्णरावजी मोहरील जिन्हे हम मिनिस्टर विदाउट पोर्टफोलियो कह सकते हैं और आबाजी थत्ते- ये तीनों सम्पर्क के केन्द्र के रूप में माने जाते थे। इसका यह अर्थ नहीं कि बाकी के लोग सम्पर्क नहीं रखते थे-सभी लोग सम्पर्क रखते थे। आखिर सम्पर्क ही तो संघ कार्य की आत्मा है। हरेक प्रचारक, हरेक कार्यकर्ता अपनी अपनी सीमा में, अपनी क्षमतानुसार अन्य लोगों से सम्पर्क रखता ही है। किन्तु इन तीनों को सम्पर्क केन्द्र के रूप में ही माना जाता था। सरसंघचालक, सरकार्यवाह से लेकर, रसोई की व्यवस्था में जुटे प्रसाद सिंह जैसे कर्मचारी की, कार्यालय में बाहर से आने वाले अभ्यागतों-चाहे वे स्वामी चिन्मयानंदजी हो या राजा भैया पूंछवाले हो - विभिन्न प्रकृति - विभिन्न प्रवृत्ति के सभी लोगों की समान चिंता ये तीन लोग ही विशेषरूप से किया करते।

अनौपचारिक शक्ति केन्द्र

उन दिनों में संघ की दृष्टि से एक अनौपचारिक शक्ति केन्द्र नागपुर की नागोबा की गली में भी था। पूजनीय ताई (गुरुजी की माताजी), पू. भाऊजी

(पिता), वहां रहते थे। नये लोगों को यह कल्पना करना असंभव है कि पू.ताई का कितना और किस तरह का योगदान संघ कार्य को रहा है। उनका अपना एक दरबार था, अपना एक विश्व था। इस विश्व से जुडे हुए सभी लोगों के साथ मिलकर वहां का वायुमण्डल स्वस्थ रखने का जिम्मा आबाजी ने खुद अपने ऊपर लिया था। सम्पर्क उनका स्वभाव ही था। वे परिश्रम पूर्वक सम्पर्क किया करते। कार्यालय में भोजनोपरान्त विश्रांति लेने की बजाय आबाजी सायकिल, मोटारसाइकिल जो वाहन उस समय उपलब्ध हो, उसे लेकर निकल पडते सम्पर्क के लिये। नागपुर में कितने ही परिवार हैं, जिन परिवारों में ज्येष्ठ सदस्य के नाते ही उनका स्थान रहा है और आज वे सभी परिवार यही अनुभव कर रहे हैं कि उनके परिवार का ज्येष्ठ पुरुष नहीं रहा। अब हम अनाथ हो गये! यह भावना केवल नागपुर में ही नहीं, देश भर में प.पू. श्री गुरुजी तथा पू.बाळासाहबजी के साथ जहां जहां वे गये, उन स्थानों पर सैकडों परिवारों से घनिष्ट सम्पर्क उनका रहा है, उन परिवारो में भी यही भावना निर्माण हुई है।

प्रचंड पत्राचार

पूजनीय श्री गुरुजी के निधन के पश्चात सरसंघचालक श्री बाळासाहब देवरस के सहायक के रुप में, आबाजी उनके साथ देश भर में भ्रमण करते और पूजनीय श्री गुरुजी द्वारा प्रस्थापित सम्बन्धों और व्यक्तियों के बारे में जानकारी देते। पुराने सम्बन्धों और उनके स्वरुप को ध्यान में रखकर संघ कार्य के साथ उन्हे जोडे रखने की जिम्मेदारी निभाने में पूजनीय बाळासाहब को आबाजी से काफी सहायता मिली। इस प्रकार देश भर में इतना व्यापक उनका सम्पर्क था। इस सम्पर्क को बनाये रखने में न केवल शारीरिक परिश्रम करना पडता वरन पत्र व्यवहार भी बहुत करना पडता था। स्व-हस्ताक्षरों में प्रचण्ड पत्र व्यवहार करने वालों में महात्मा गांधी और पू.श्री गुरुजी की ख्याति सभी को ज्ञात है। पर आबाजी भी स्वयं अपने

हस्ताक्षरों में नियमीत रुप पत्र व्यवहार करते रहे। अपनी अंतिम बीमारी के समय जब वे दिल्ली में थे तब उनका दाहिना अंग लकवा ग्रस्त हो चुका था। इस अवस्था में भी विजयादशमी के अवसर पर उन्होने अपने बांये हाथ से पूजनीय बाळासाहब को पत्र लिखा। यह उनका अन्तिम पत्र था। इस प्रकार प्रचण्ड पत्राधार और प्रचण्ड सम्पर्क-यह उनका अभूतपूर्व कार्य रहा।

आबाजी थत्ते अपनी आत्म-विलोपी वृत्ति के कारण सरसंघचालक के लिये छाया के रूप में ही थे। जन मानस में इस साहचर्य के कारण यह बात पैठ गई थी कि पूजनीय गुरुजी जहां भी जाते, चाहे वह किसी का निजी पारिवारिक कार्यक्रम हो, विवाह, व्रतबंध, जैसा धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रम हो, आबाजी थत्ते भी उनके साथ वहां अनिवार्य रूप से उपस्थित रहते हैं। छाया रूप इस साहचर्य के कारण लोगों की मानसिकता कुछ ऐसी बन गई थी अगर किसी कारणवश पू.गुरुजी किसी पारिवारिक या सामाजिक कार्यक्रम में नहीं जा सके और उनके स्थान पर आबाजी वहां पहुंच जाते तो लोग यही मानते कि पू.गुरुजी का प्रतिनिधित्व हो गया। किसी कार्यकर्ता के लिये अत्यंत कठिन काम है कि वह स्वयं अपने आपको इतना विलीन कर ले।

आदर्श प्रचारक

संघ संस्थापक प.पू.डॉक्टरजी की कल्पनानुसार संघ कार्य के विस्तार के साथ ही संघ के ही कार्यकर्ताओं द्वारा 'प्रोग्रेसिव्ह अन फोल्डमेंट' के रूप में विविध क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कार्य और संस्थाएं खडी की गई तो उन कार्यों और संस्थाओं के बीच परस्पर सामंजस्य-समन्वय बिठाने में, जिसे हम 'लुब्रिकेन्ट को ऑपरेशन' का काम भी कह सकते हैं, आबाजी थत्ते के व्यापक सम्पर्क का बहुत उपयोग हुआ। विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के साथ उनका इस तरह का व्यवहार और सम्बन्ध था। वैसे तो अन्तिम दिनों में जब उन्हे अ.भा.प्रचारक प्रमुख घोषित किया गया तब प्रचारकों को

संस्कारित करने के अलावा ग्राहक पंचायत, सहकार भारती के मार्गदर्शन और राष्ट्रसेविका समिति तथा अन्य महिला संगठनों का संघ के साथ सामंजस्य प्रस्थापित करने का दायित्व भी सौंपा गया। इन सभी संस्थाओं में 'लुब्रिकेन्ट को-ऑपरेशन' निर्माण करने में आबाजी के सम्पर्क प्रयासों का बहुत बडा योगदान रहा है। इस कार्य में उनकी सफलता का अनुभव हम संघ पर अंतिम प्रतिबंध के काल में ले चुके हैं। उनकी योग्यता और कार्यक्षमता को ध्यान में रखते हुए हम उनके जीवन की ओर देखेंगे तो हम किसी आदर्श को ही देख रहे हैं, ऐसा महसूस हुए बिना नहीं रहेगा- इसे अलग से शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं। बस उन्हे देख लिया कि आदर्श कार्यकर्ता, आदर्श प्रचारक-आदर्श स्वयंसेवक कैसा होना चाहिये, इसका स्वयं पता चल जाता था।

'मैं नहीं तू ही' का सूत्र

प.पू. श्री गुरुजी कार्यकर्ताओं की बैठकों में आग्रह पूर्वक कहा करते थे कि संघ के कार्यकर्ता को आत्म विलोपी होना चाहिये। यह आत्म विलोपी बडा कठिन शब्द है। इसे समझाने के लिये वे अलेक्झेंडर पॉप की अंग्रेजी कविता की पंक्तियां सुनाते थे। कविता का शीर्षक था 'ओनली टु सॉलीटयूड' और अंतिम पंक्तियां इस प्रकार थी - Thus, Let me Live unseen unknown अर्थात मुझे इस तरह जीने दो कि कोई मुझे न देखे, कोई मुझे न जाने न पहिचाने। Thus, unlamented Let me die मेरी मृत्यु इस तरह हो कि कोई मेरे लिये शोक न करे, Thus unlamented Let me die still from the world and not a stone install where I lie. अर्थात, मैं इस दुनिया से किसी को पता न चलते हुए खिसक जाऊं और जहां मुझे गाडा जायेगा वहां कोई पत्थर भी खडा नहीं करना चाहिये, ताकि किसी को पता न चल सके कि मुझे यहां गाडा गया है, मैं यहां सो रहा हूं। ऐसा श्री गुरुजी बताते थे और गुरुजी ने अपनी मृत्यु के पूर्व जो मृत्यु पत्र लिखा उसमें अपने बारे में

जो लिखा वह इससे सुसंगत है कि 'मेरा कोई स्मारक नहीं होना चाहिये।' इन पंक्तियों को ठीक ढंग से जिन्होने समझ लिया, धारण किया और क्रियान्वित किया-ऐसे हमारे आबाजी हमारे सामने आदर्श के रुप में है, और उनको जो आज हम श्रध्दांजली दे रहे हैं, तो उनका यह जो गुण समुच्चय है, उसका अनुकरण करने का हम ज्यादा से ज्यादा प्रयास करें। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रध्दांजली होगी। ये सारा जो आत्म-विलोप है, यह वृत्ति हमारे अंदर भी आ जाए। आज के वायुमण्डल में यह प्रवृत्ति लाने के लिये विशेष प्रयास करना पड़ेगा। यह विशेष प्रयास हम करें और आत्म-विलोप का अति संक्षिप्त वर्णन पूजनीय श्री गुरुजी ने 'नाहीं तू नाहीं' - इन शब्दों में किया है। इस सूत्र को ध्यान में रखकर आबाजी का अनुकरण करने का हम प्रयास करें। इन शब्दों के साथ हृदय से अपनी श्रध्दांजली समर्पित करता हुआ अपना भाषण यहीं समाप्त करता हूँ।

◆◆◆

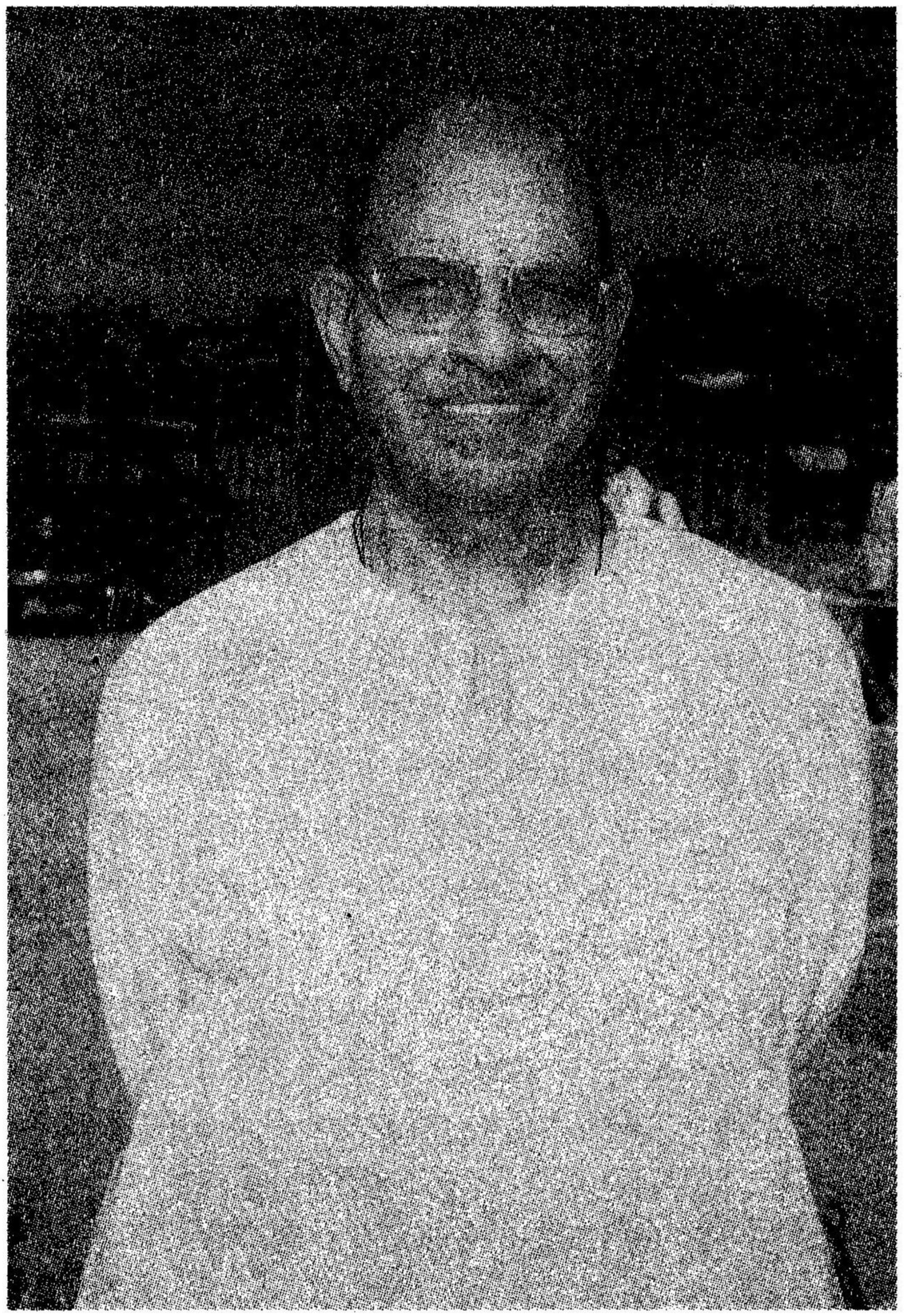

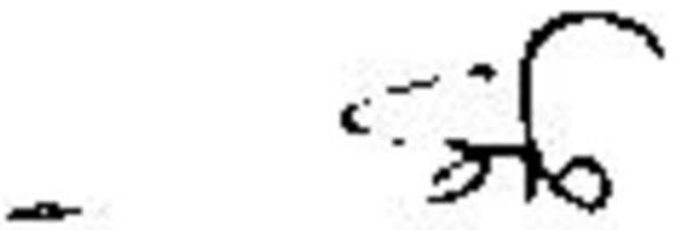

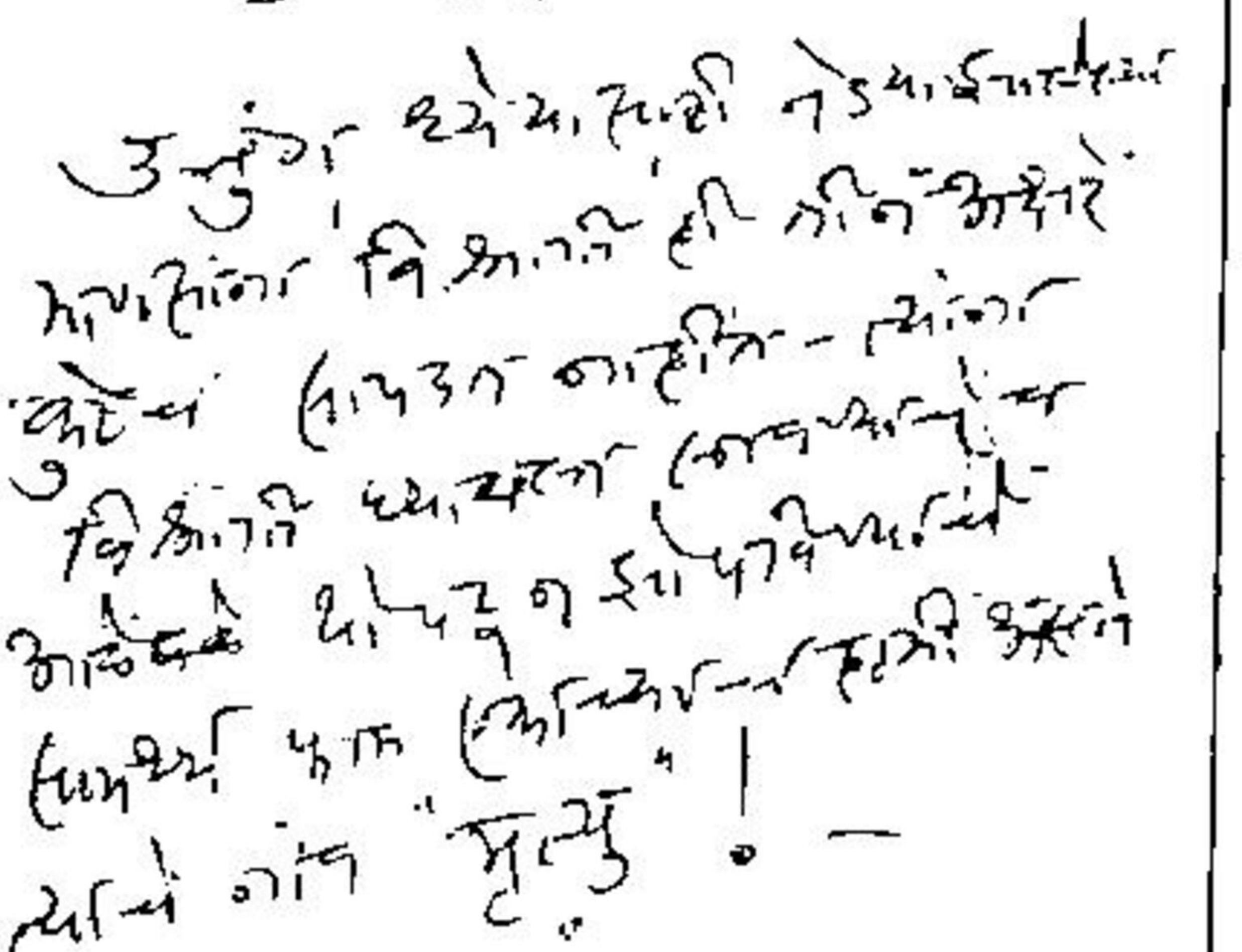

स्व. अण्णाजी थत्ते यांच्या दैनंदिनी (डायरी) तील शेवटचे पान त्यांच्या हस्ताक्षरांत —

प्रकाशक	[illegible]
संपादन	[illegible]
शब्दांकन	[illegible]
मुद्रक	[illegible]
सहयोग राशि	[illegible]

भावांजली

आवरू कैसे कळेना हुंदका हा दाटला
काळरात्रीचा भयानक तिमिर हा कोंदाटला ।।धृ।।

शब्द झाले हे मुके अन् बधिर झाली भावना
आसवे गळती परंतु शुष्कता ये लोचना
ध्येयवेड्या जीवनाचा अंत का हा जाहला ।।१।।

घडु नये ते आज घडले ईश्वरी इच्छा खरी
लाख हृदये स्फुन्दताती दुःख दाटे अंतरी
खळखळोनी भावनांनी बांध आता फोडिला ।।२।।

ठेविली ना आस कधिही लौकिकाची जीवनी
गाठण्या उत्तुंग ध्येया मार्ग हा स्वीकारूनी
राष्ट्रपुरुषाला समर्पुन हा अखेरी थांबला ।।३।।

विश्व माझे घर असा नित भाव हा जोपासुनी
प्रेमसूत्रे जोडिले जन हृदयि त्यांच्या बैसुनी
पारदर्शक जीवनाचा कार्यकर्ता हरपला ।।४।।

दाखवा उत्साह ऐसा तरूण ही लाजे मनी
व्हावया आदर्श झटला मी पणा तो सांडुनी
भारताच्या अस्मितेचा एक तारा निखळला ।।५।।

सौ. प्रभाताई टेंभेकर
२१६ हनुमान नगर, नागपूर